''औपनिवेशिक भारत में प्रेस और राष्ट्रवाद''

श्रवण कुमार ठाकुर

19वीं सदी के नवोत्थान के पूर्व लोग वर्तमान समय के तूफानों और उलटफेर से बेखबर, गुजरे हुए मृत लोंगों की जिन्दगी बिता रहे थे जिसमें कोई उत्साह, उमंग और कशमकश नहीं थी। सर्वत्र संतोष, शान्ति, निराशा और बेबसी की भावना व्याप्त थी। सर्वत्र जिन्दगी की, समाज की, समस्त ताकत, आशा, आकांक्षा का सारपूर्ण अंश चुक गया था। समाज की सभी क्रियाएँ एक पंगु, बंधी–बँधायी लीक पर आकर थम गयी थी। किन्तु 19वीं शताब्दी में हिन्दी साहित्य एवं पत्रकारिता ने पराधीन भारतीय जीवन की सम्पूर्ण चिन्तन धारा का रुख ही बदल दिया तथा लोग क्रांतिकारी परिवर्तनों और नवोत्थान की तेज लहर के वशीभूत होते जा रहे थे। उस समय भारत एक आमूल चूल औपनिवेशिक क्रान्ति के दौर से गुजर रहा था। विदेशी शिक्षा संस्कृति तथा ब्रिटिश हित पोषक साम्राज्यवादी अर्थव्यवस्था के गहरे आघात ने भारतीय जनमूल्यों, सामन्ती परिवेश और सामाजिक विसंगतियों पर गहरे प्रश्न चिह्न लगा दिये थे। राष्ट्रवाद से लोकमानस की जड़ता टूटी थी। उन्हें इस प्रहार ने आत्म विश्लेषण और वैचारिक आत्ममंथन के लिए प्रेरित किया था। तीव्रगति से बदलते इतिहास से दिग्भ्रमित जनसमुदाय को नये सोच, नये आत्माभिमान और नये ज्ञान की ज्योति से सही मार्ग सुझाया था।